प्राचीन भारत में मंदिर स्थापत्य का विकास

षोधार्थी :
दिव्यांश वार्ष्णेय
एम.ए. चतुर्थ सेमेस्टर
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति

पर्यवेक्षक:
प्रोफेसर योगेंद्र पाल सिंह सोलंकी
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति
आई.ओ.पी वृंदावन, मथुरा

सारांश:

भारतीय समाज के प्रत्येक सदस्य को अपनी प्राचीन भारतीय मंदिर स्थापत्य संस्कृति की प्राचीनता एवं विकास क्रम की यात्रा से गहरा लगाव है। अपनी प्राचीन कला तकनीक को उनके समकालीन युग में अन्य संस्कृतियों से तुलना करने पर भारतीय स्वयं को अग्रणी समझकर गौरवान्वित होते रहते हैं। पूजा, उपासना, प्रार्थना करना मानव सभ्यता के उद्‌भव से ही संस्कृति का आधार रहा है। मनुष्य सांसारिक सुखों की कामना, अज्ञात भय एवं पारलौकिक जीवन से जुड़ी आकांक्षाओं इत्यादि कारणों से एक आध्यात्मिक चेतना से जुड़ा रहा है और उसका यही जुड़ाव मंदिर स्थापत्य के विकास का मुख्य कारण रहा।

प्राचीन काल से देखें तो वैदिक काल में हम पाते हैं कि मंदिरों का अस्तित्व नहीं था पूजा मुख्यतः यज्ञ और अग्नि के माध्यम से होती थी। उत्तर वैदिक काल में धीरे–धीरे मूर्ति पूजा के साक्ष्य मिलते हैं साथ ही लकड़ी एवं मिट्टी के अस्थाई मंदिर आकृतियों के बारे में पता चलता है। गुप्त काल से मंदिर स्थापत्य का एक अद्‌भुत क्रमिक विकास प्रारंभ होता है इसलिए गुप्त काल को मंदिर स्थापत्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। वर्तमान काल में मंदिर स्थापत्य की अधिकांश विशेषताएं गुप्तकालीन स्थापत्य से प्रेरणा प्राप्त करती प्रतीत होती हैं। स्थापत्य और कला के विविध रूपों से संबंधित यह विशेषताएं काल के क्रम में अपने विविध एवं उन्नत रूप को प्राप्त करती हुई वर्तमान परिदृश्य में हमारे समक्ष विद्यमान हैं। निष्कर्षतः प्राचीन भारत में मंदिर स्थापत्य निरंतर उस विकासशील प्रक्रिया का भाग रहा है जिसने कलात्मक विशेषता के साथ–साथ भारतीय सामाजिक, धार्मिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया।

विशिष्ट शब्दः स्थापत्य परंपरा, धार्मिक चेतना, सांस्कृतिक एकता, आजीविका के साधन, सामाजिक प्रभाव, आर्थिक प्रभाव, सांस्कृतिक प्रभाव।

भारतीय मंदिर स्थापत्य का विकास मानव सभ्यता की प्राचीन, अपरिपक्व एवं संकीर्ण धाराओं से लेकर स्थापत्य की परिपक्व एवं उन्नति के सर्वोच्च शिखर तक की यात्रा को संदर्भित करता है। प्रारंभिक काल में जहां देवपूजा का स्वरूप प्रतीकात्मक और स्वतंत्र था वहीं समय के साथ–साथ यह एक विकसित स्थापत्य परंपरा में परिवर्तित हो गया। प्रसिद्ध कला इतिहासकार पर्सी ब्राउन के शब्दों में, ''भारतीय मंदिर वास्तुकला शुद्ध रूप से धार्मिक मान्यताओं का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है।''[1]

इस प्रकार हम उक्त कथन से समझ सकते हैं कि प्राचीन भारत में मंदिर स्थापत्य का विकास केवल स्थापत्य कला का उदाहरण नहीं था अपितु भारतीय समाज की धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक परंपराओं का समेकित रूप था। इस विकास का वास्तविक प्रारंभ गुप्त काल से हुआ और मध्यकाल तक विभिन्न शैलियों जैसे नागर, द्रविड़ और बेसर के साथ ही अन्य क्षेत्रीय शैलियों में अपने सर्वोच्च रूप में पहुंचा। अतः भारतीय मंदिर स्थापत्य के विकास को मात्र काल के अनुक्रम में नहीं अपितु भारतीय संस्कृति की निरंतरता और विविधता के रूप में देखना न्यायसंगत होगा।

भारत में प्रारंभ से ही धार्मिक चेतना प्रबल रही है। इसी के साथ पूजा स्थलों की आवश्यकता उत्पन्न हुई। अगर हम प्रारंभ से देखें तो स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में उपासना का स्वरूप आज के मंदिर पूजा के बिल्कुल भिन्न था जो कि यज्ञ पर केंद्रित था। उत्तर वैदिककाल व महाजनपद काल में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिसका कारण था धार्मिक अनुष्ठानों में परिवर्तन। इस संबंध में रोमिला थापर का निम्न कथन उक्त अंतर को समझने में तत्वों को अधिक स्पष्टता के साथ हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। कि ''प्रारंभिक वैदिक और उत्तर वैदिक समाज में धार्मिक आस्था का केंद्र यज्ञ था, ना कि मंदिर या मूर्ति पूजा।''[2]

मौर्य काल में राजकीय संरक्षण के फलस्वरूप मंदिर स्थापत्य को बढ़ावा मिला। पहले लकड़ी का प्रयोग होता था अब पत्थर की स्थाई संरचनाएं बनने लगी। उदाहरणार्थ– पहाड़ों को काटकर गुफाएं बनाई गई जैसे की बराबर की गुफाएं। हालांकि मौर्य काल में मंदिर स्थापत्य पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुआ लेकिन स्थाई निर्माण तकनीक और पत्थर के उपयोग की नींव पड़ी। मौर्य काल के अपूर्ण मंदिर स्थापत्य शैली को गुप्त काल में गति मिली, जिसके फलस्वरुप उन्नति का वह उच्च स्तर प्राप्त हुआ, जिसने गुप्त काल को मंदिर स्थापत्य के स्वर्ण युग के रूप में स्थापित कर दिया। इस काल में मंदिर की संरचनात्मकता में वृद्धि हुई, पत्थर व ईंटों का बड़े स्तर पर प्रयोग हुआ साथ ही वर्तमान की मंदिर शैली की विशेषताएं भी दृष्टिगोचर होती हैं जैसे– देवता की मूर्ति का मंदिर के केंद्र गर्भग्रह में तथा शिखर की शुरुआत होना। देवगढ़ का दशावतार मंदिर भारतीय मंदिर शैली का प्रथम उदाहरण बना जिसमें शिखर का प्रयोग किया गया। गुप्त काल में

मंदिर स्थापत्य ने एक संगठित और परिपक्व रूप से ग्रहण किया। अतः हम कह सकते हैं कि गुप्त काल में मंदिर स्थापत्य का वास्तविक विकास हुआ। गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य को रेखांकित करते हुए आर. सी. मजूमदार स्पष्ट करते हैं कि ''गुप्त काल भारतीय कला और स्थापत्य का स्वर्ण युग था, जिसमें मंदिर वास्तुकला का व्यवस्थित विकास हुआ।''[3]

प्रारंभिक मध्यकाल में विभिन्न राजवंशों ने मंदिर निर्माण को प्रोत्साहित किया। चालुक्य, पल्लव और राष्ट्रकूट शासकों ने स्थापत्य कला में महत्वपूर्ण योगदान दिया। राष्ट्रकूट काल में एलोरा में भगवान षिव को समर्पित अत्यंत भव्य और विषाल कैलाश मंदिर का निर्माण कराया गया जो कि विशाल एकाष्मक ज्वालामुखी चट्टान को ऊपर से नीचे की ओर काटकर बनाया गया। इस प्रक्रिया में लगभग दो लाख टन चट्टान को काटकर हटाया गया। यह कलात्मक उत्कृष्टता का अद्भुत उदाहरण है जो कि आज भी आकर्षण और विस्मय का मुख्य केंद्र बिंदु बना हुआ है। हालांकि बारहवीं शताब्दी के बाद मंदिर स्थापत्य में कुछ हद तक गिरावट देखी गई क्योंकि यह काल बाहरी आक्रांताओं एवं राजनीतिक अस्थिरता का काल था। इसके बावजूद मंदिर स्थापत्य की परंपरा पूरी तरह समाप्त नहीं हुई अपितु बदलते समय के साथ उसमें परिवर्तन होता रहा।

भारतीय उपमहाद्वीप के विशाल आकार एवं विविधता के चलते मंदिर स्थापत्य का विकास क्रम अलग–अलग क्षेत्र में अलग–अलग प्रकार से विकसित हुआ और भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया। मंदिर स्थापत्य मुख्यतः तीन प्रमुख शैलियों में विकसित हुआ –

नागर शैली – विंध्य श्रृंखला के उत्तरी भौगोलिक क्षेत्र में नागर शैली का उत्तरोत्तर विकास हुआ। इस शैली की महत्वपूर्ण विशेषता अथवा पहचान इसका ऊंचा वक्राकार शिखर और आमलक एवं अंत में कलश। वर्तमान संदर्भ में अयोध्या में नव निर्मित प्रभु श्री रामलला के मंदिर को नागर शैली का उत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है। नागर शैली में भी कई क्षेत्रीय विविधताएं देखने को मिली जैसे कि ओडिशा शैली, खजुराहो शैली, सोलंकी शैली इत्यादि।

द्रविड़ शैली – विंध्य के दक्षिण में इस शैली का प्रादुर्भाव हुआ। नागर शैली के विपरीत इसमें शिखर पिरामिड आकार का रहा जिसे विमान कहा गया जो कई मंजिलों का होता है। इस शैली में मंदिर परिसर में ही जलकुंड का निर्माण किया जाता था। मंदिर के प्रवेश द्वार को गोपुरम कहा गया। इस शैली के प्रमुख उदाहरण वृद्धेश्वर मंदिर, मीनाक्षी मंदिर।

बेसर शैली – इस शैली में हम उपर्युक्त दोनों शैलियों का समन्वय देख सकते हैं। इसमें अत्यधिक नक्काशी दार कार्य देखने को मिलता है। उदाहरण पट्टडकल मंदिर समूह, होयसलेश्वर मंदिर। मंदिर स्थापत्य शैली के संबंध में पर्सी ब्राउन नागर शैली की विषिष्टता बताते हुए कहते हैं। कि– ''नागर शैली की प्रमुख विशेषता इसका उर्ध्वमुखी शिखर है, जो वर्तमान श्रृंग की भांति ऊपर उठता है।''[4] वहीं एडम हार्डी द्रविड़ षैली पर प्रकाष डालते हुए स्पष्ट करते है कि– ''द्रविड़ शैली में मंदिर का विकास एक जटिल, क्रमिक विस्तार के रूप में हुआ, जिसमें विभिन्न प्रकार और गोपुरम जोड़े गए हैं।''[5]

मंदिर स्थापत्य से जुड़े विविध भागों एवं संरचनात्मक तत्वों को विशिष्ट शाब्दिक नाम दिए गए हैं जिन्हें हम निम्न प्रकार समझ सकते हैं –

गर्भगृह – यहां मुख्य देवता की मूर्ति स्थापित होती है।

मंडप – पूजा अर्चना एवं सभा के लिए बनाया गया एक बड़ा हॉल।

शिखर अथवा विमान – यह गर्भगृह के ऊपर विस्तृत ऊंचा भाग होता जिसे नागर शैली में शिखर एवं द्रविड़ शैली में विमान नाम से संबोधित किया जाता है।

गोपुरम – विशेष रूप से दक्षिण भारतीय मंदिरों में विशाल प्रवेश द्वार को कहा जाता।

प्रदक्षिणा पथ – गर्भगृह के चारों ओर परिक्रमा का मार्ग।

मंदिर स्थापत्य के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक प्रभावों को समझने का प्रयास करें तो हम पाते हैं कि मंदिर समाज के लोगों की धार्मिक चेतना को एकीकृत कर उनको एक स्थान पर एकत्रित करने का प्रमुख केंद्र बने।

’ मंदिरों में वेद, पुराण, दर्शन, संगीत की शिक्षा दी जाती था। इस प्रकार मंदिरों के साथ शिक्षण संस्थान जुड़े।

’ मूर्तिकला, चित्रकला और वास्तुकला का उत्कर्ष हुआ।

' मंदिरों में विभिन्न धार्मिक उत्सव मनाए जाने लगे।

' मंदिरों के आसपास बाजार विकसित हुए एवं तीर्थ यात्रियों के कारण व्यापार बड़ा।

' निर्माण कार्य में शिल्पकार, कारीगर ,मूर्तिकार, मजदूर आदि की आवश्यकता पड़ती थी जिससे लोगों की आवश्यकता के साधन के रूप में रोजगार मिला।

' विभिन्न जातियों और वर्गों के लोग उपासना हेतु एक स्थान पर आते हैं जिससे परस्पर सौहार्द का वातावरण निर्मित होता है एवं ऊंच–नीच जैसी कुंठित कर देने वाली भावनाओं का भी दमन होता है।

' मूर्तियों एवं भित्ति चित्रों में उत्तीर्ण कथाओं के माध्यम से भी जनमानस में सकारात्मक संदेश पहुंचते हैं।

' मंदिर स्थापत्य के विकास के क्रम में मूर्तिकला, चित्रकला और वास्तुकला का उत्कर्ष हुआ जिसके फलस्वरुप मंदिर भारतीय कला के प्रमुख केंद्र बने।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो हम पाते हैं कि मंदिर स्थापत्य ने प्राचीन परंपरा और आधुनिकता के बीच एक अद्भुत समन्वय स्थापित कर एक नया रूप धारण कर लिया है। आधुनिकता के दौर में भी हम इस तथ्य से विमुख नहीं हो सकते कि स्थापत्य की मूल आत्मा आज भी परंपरागत सिद्धांतों से संपृक्त है।

वैदिक काल से प्रारंभ होकर भारतीय मंदिर स्थापत्य कला ने विभिन्न कालों व वंशों में अपना रूप द्विगुणित कर भारतीय संस्कृति को एक संवर्धित और परिपूर्ण स्थापत्य से समृद्ध किया। समग्र रूप से देखा जाए तो प्राचीन भारत में मंदिर स्थापत्य का विकास एक सतत और गतिशील प्रक्रिया रही है। यह केवल स्थापत्य कला का विकास नहीं बल्कि भारतीय सभ्यता की आत्मा का प्रतिबिंब है। इस प्रकार मंदिर स्थापत्य भारतीय इतिहास और संस्कृति की एक अमूल्य धरोहर है जो आज भी हमारे राष्ट्रीय गौरव और अस्मिता का प्रतीक बनी हुई है। साथ ही इसने बहुसंख्यक भारतीय जनमानस को परब्रह्म सच्चिदानंद से एकीकृत करने का प्रभावी माध्यम प्रदान किया है।

सन्दर्भ

1. पर्सी ब्राउन, भारतीय वास्तुकला नई दिल्लीः डी.बी. तारापोरवाला एंड कंपनी, 1959, पृ. 85

2. रोमिला थापर, प्रारंभिक भारतः उत्पत्ति से लेकर सन् 1300 ईस्वी तक, नई दिल्लीः पेंगुइन बुक्स, 2002, पृ. 128

3. आर. सी. मजूमदार, साम्राज्यवादी एकता का युग, मुंबईः भारतीय विद्या भवन, 1960, पृ. 250

4. पर्सी ब्राउन, भारतीय वास्तुकला, नई दिल्लीः डी.बी. तारापोरवाला एंड कंपनी, 1959, पृ. 112

5. एडम हार्डी, भारतीय मंदिर वास्तुकलाः स्वरूप और रूपांतरण, नई दिल्लीः अभिलेख प्रकाशन, 1995, पृ. 245

Copyright & License:

© Authors retain the copyright of this article. This work is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.